

जीवन के पहले बीस वर्ष मध्यप्रदेश में ही बीते। मुझे विश्वास है कि बचपन युवावस्था में ही पूरी जिन्दगी बसी मिलती है, जन्म दान की तरह। बाद में हमें अपनी निजी शक्तियों से आगे बढ़ना पड़ता है, पर साँचा नहीं बदलता। इस समय के बारे में जब भी सोचता हूँ, तीन विशेष स्मृतियाँ उभर आती हैं : परिवार, धरती और शिक्षक।

घर का वातावरण पवित्र और स्नेहमय था। माँ का प्यार, अब्बा की तालीम, बचपन में मुझे जो हिदायत और तहजीब मिली, उसपर मुझे नाज़ है। पिता धार्मिक थे जरूर, पर कट्टर किस्म के नहीं। सत्य, सिद्धान्त और अनुशासन पसन्द। वन संरक्षक होने के कारण ही हमारा सारा बचपन मध्यप्रदेश के जंगलों में ही बीता। नरसिंहपुर, मंडला, सिवनी, चौदा और दमोह। पहली स्मृतियाँ कान्हा किसली की ही हैं। पहाड़, सुन्दर वृक्ष, नदियाँ। आम और इमली के पेड़। पक्षी और जानवर : मोर, मैना, गाय, हाथी, बन्दर। बारिश में कैंचर, रात में साँप। याद है, कभी कभी चीतल, तिन्दु और शेर भी छलाँग मारकर, ऊँची दीवारों को पार कर घर आ जाते। हम संरक्षित थे, क्षति तो कभी न हुई, पर डर बहुत लगता था।

बिना जाने, इसी समय ही प्राकृतिक सौन्दर्य का सुझाव मिला। धरती की समस्याएँ सामने थीं। रात और दिन, मौसम, गर्मी, बारिश। एक ओर बन्जर रेन्ज, और दूसरी ओर कान्हा किसली के सुन्दर वन। हमारे गाँव, मिट्टी से बने हुए घर, लाल खपरे, चूने से पुती सफेद दीवारें, मूर्ति और मन्दिर, रविवार के मेले, किसान और हल, अधवासियों के नृत्य-संगीत ये सब आस भी एक चित्र वीथी की तरह आकर प्रस्तुत हो जाते हैं। पहले मोती नाला, फिर बाद में मंडला में ही, घर के पास नर्मदा थी, एक नैसर्गिक शक्ति की तरह। भयंकर पूर आते थे, और फिर शान्त दिनों में हम पुराने किले के पास घाटों पर जाते थे। नदी सुख-शान्ति से बहती थी, घाट सुन्दर और रहस्यमय थे।

इन्हीं दिनों अन्धकार ही नहीं, एक कठोर बेचैनी का अहसास था। अस्त व्यस्त। कुछ ऐसी थी कि शाला में मन ही नहीं लगता। भाग्य से ककैया गाँव में प्रायमरी शाला के शिक्षक श्री पंडित नन्द लाल जी ने मेरे भक्त हुए मन को एक “बिन्दु” पर केन्द्रित किया। उस समय इस पाठ की महत्ता को पूरी तरह से न समझ सका फिर भी तब से अब तक यही “बिन्दु” एक ध्रुव तारे की तरह राह बताता रहा है।

पढ़ाई के लिये, हम जंगलों से विदा लेकर, दमोह आये। यहाँ माँ का पूरा परिवार था और इसी स्नेहमय सात्विक वातावरण में किशोरावस्था बीती। यहीं मुझे मिला नया संस्कार, नया प्रवेश, सहज और पवित्र हिन्दू पृष्ठभूमि। इसका श्रेय मैं अपने शिक्षकों को ही दूँगा। सबसे पहले स्वर्गीय वेनी प्रसाद जी स्थापक को, जिनकी कृपा से प्रथम पाठ “बिन्दु” की समझ

मिली और एकाग्रता बढ़ी। इन्हीं ने मुझे दिया शाला से प्रेम, जीवन में उत्साह और प्रकाश। इनके शब्दों में जादू था, आवाज में संगीत, इनका जीवन हमारे लिये एक उदाहरण था। धार्मिक मनोवृत्ति, सत्य विचार, स्वस्थ शरीर, स्वच्छ कपड़े, संकल्प, उत्साह, शाला और विद्यार्थियों का प्रेम, यही इनका जीवन था। वे हिमालय पर जाते थे। किसी आश्रम में आपने गुरु से मिलने, और लौटकर सुन्दर कहानियाँ और श्लोक सुनाते थे। दमोह के गोख, गुरुवर स्थापक जी, आज भी सैकड़ों छात्रों की स्मृतियों में अमर हैं।

कुछ समय बाद, प्रोत्साहन दमोह हाई स्कूल में ही मिला। मैं कई विषयों में कमजोर था। हमारे ड्राइंग टीचर श्री दरयाव सिंह जी राठौर ने कला में रुचि जगाई। इन्हीं के कारण ही, एक साधारण विद्यार्थी को अहसास हुआ कि शायद उसकी निजी शक्तियाँ, भावुकता, बेचैनी दूसरे क्षेत्रों में उपयुक्त हो सकती हैं। रंगों और रेखाओं की सुन्दरता, कलम, उंगलियों और दृष्टि का सम्बन्ध, अवलोकन, प्रमाण, रेखा गणित पहली बार, इन्होंने ही बढ़ी सरलता से समझाया। इस रोशनी में चित्र कला की पहली पहचान, रंगों की समझ मिली, आत्मविश्वास बढ़ा।

हमारे ऐतिहासिक संस्कार नगर दमोह ने भी अपने नवयुवक विद्यार्थियों के उत्साह को समझा और पूरी तरह निभाया। हम नई प्रेणाओं से प्रभावित थे। जवानी के उत्साह में, जीने की इच्छा तो थी अवश्य, पर हमें खोज थी "भाषा" की। यह वह मुख्य माध्यम जिसके बिना सोचना, बोलना, लिखना असम्भव है। भाग्य से इसी समय एक कवि दमोह आये। ये थे हमारे शिक्षक गौरी शंकर जी लहरी। इन्होंने बड़े आत्मीय ढंग से हमें हिन्दी भाषा पढ़ाई। कभी रामायण के दोहे, कभी कविता या साहित्य, और कभी अपनी कविता भी। शाला के बाद कला और संगीत पर बातचीत होती थी। उसी समय इन्हीं के प्रोत्साहन से हमने पहली हस्तलिखित पत्रिका जिसका नाम था "पुष्पाञ्जलि"। हमारे मित्र जानकी प्रसाद, पुरुषोत्तम लाल और मेरे बड़े भाई यूसुफ रजा इसके संपादक थे। कविता तो मेरे बस की बात न थी, पर मैंने ही इस पत्रिका का मुख पृष्ठ बनाया था।

दमोह के बाद कला शिक्षा के तीन वर्ष नागपुर में बीते। इतना बड़ा शहर कभी न देखा था, पर यहाँ भी कला गुरु श्री बापूराव आठवले का स्नेह मिला। धन्तोली में स्थित यह कला केन्द्र एक आश्रम के समान था जहाँ सारे प्रदेश से विद्यार्थी आते थे। और उसी समय नये नये शिक्षक-चित्रकार भी बुलाये गये। मुझे शाला में ही नहीं कुटुम्ब में भी विशेष स्थान मिला। दिन में कला अध्ययन, और कभी कभी शाम को शुद्ध भारतीय संगीत। समय अनिश्चित और तनाव का था। यूरोप में महायुद्ध, देश में आन्दोलन। आर्थिक कठिनाइयों के बीच अपनी पढ़ाई करना बहुत कठिन लगता था, पर इन तीन वर्षों में गुरुवर आठवले ने जो मुझे योगदान और सहायता दी, उसे मैं कभी न भूलूँगा।

बम्बई और पैरिस के संघर्ष के बाद, आज भी मैं, इन स्मृतियों को आभार सहित याद करता हूँ। मैं कृतज्ञ हूँ। कभी कभी कहता हूँ, "विधाता, आपने सब कुछ सोच रखा था।"

कभी कहता हूँ “केवल एकाग्रता और कठोर श्रम में ही जीवन है”। मालूम नहीं। बस यही जानता हूँ कि मुझे शक्तियाँ मिलीं इसी प्रदेश में, देश के बीच स्थित, “मध्य प्रदेश”, देह में हृदय के समान।

~~मैयद हैदर रजा~~ Selate

पेरिस - 1981